विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ला - ९, गुरुवार, तारीख १९-८-१९८०
वचनामृत-१९९, २०० प्रवचन-१२

जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं, उन सबमें से विमुख हो और मात्र चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे; अवश्य प्राप्ति होगी ही। अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है, इसलिए तू भी ऐसा कर।

अनन्त-अनन्त काल गया, जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न? अटकने के तो अनेक-अनेक प्रकार हैं; किन्तु सफल होने का एक ही प्रकार है—वह है चैतन्यदरबार में जाना। स्वयं कहाँ अटकता है, उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।

द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्मरूप से अटक जाता है, शुभ भाव की मिठास में रुक जाता है, 'यह राग की मन्दता, यह अट्ठाईस मूलगुण,—बस यही मैं हूँ, यही मोक्ष का मार्ग है', इत्यादि किसी प्रकार सन्तुष्ट होकर अटक जाता है; परन्तु यह अन्तर में विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है, उसे क्यों नहीं देखता? अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती? पापभाव को त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया' मानकर सन्तुष्ट हो जाता है। सच्चे आत्मार्थी को तथा सम्यग्दृष्टि को तो 'अभी बहुत बाकी है, बहुत बाकी है'—इस प्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है, ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।

गृहस्थाश्रम में सम्यक्त्वी ने मूल को पकड़ लिया है, (दृष्टि-अपेक्षा से) सब कुछ कर लिया है, अस्थिरतारूप शाखाऐं-पत्ते जरूर सूख जायँगे। द्रव्यलिंगी साधु ने मूल को ही नहीं पकड़ा है; उसने कुछ किया ही नहीं। बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वी को अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनि ने बहुत कर लिया'; परन्तु ऐसा नहीं है। परीषह सहन करे किन्तु अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलता का वेदन होता है, उसने कुछ किया ही नहीं॥१९९॥

वचनामृत १९९। **जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं,...** अनादि काल से कुछ.. कुछ.. कुछ.. शल्य गहराई में रहता है। साक्षात् चैतन्य का आनन्द का अनुभव न हो तो भी अपना मान लेते हैं, ऐसे अटकने के असंख्य प्रकार हैं। **जीव को अटकने के जो अनेक प्रकार हैं, उन सबमें से विमुख हो...** आहाहा! अटकना क्या है, वह भी थोड़े विचार बिना बैठ सकता नहीं। कहाँ-कहाँ मेरी भूल हो रही है और मैं कहाँ अटक जाता हूँ, मैं क्या मानता हूँ? अतीन्द्रिय आनन्द का ढ़ेर आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्द का पुंज प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन बिना जो बाह्य क्रिया है, सब निरर्थक है। वहाँ अटक जाता है, मैं कुछ करता हूँ। व्रत पालता हूँ, ब्रह्मचर्य पालता हूँ, कुछ आचरण-क्रिया करता हूँ, ज्ञान में कुछ जानपना करता हूँ, ऐसे अनेक प्रकार का रुकने का कारण होता है।

प्रभु! **सबसे विमुख हो...** ऐसा मनुष्यपना मिला, नाथ! आहाहा! अनन्त काल में मनुष्यपना मिलना दुर्लभ, उसमें जिनवाणी सुनने मिलनी मुश्किल, यह जो मिला है तो प्रभु! सबमें से विमुख हो। दुनिया की बात छोड़ दे। आत्मा के आनन्द के अलावा कहीं भी रुकना, कहीं भी रुकने से मैं हूँ, ऐसी दृष्टि छोड़ दे, प्रभु! आहाहा! **सबमें से विमुख हो और मात्र चैतन्यदरबार में ही...** आहाहा! मात्र चैतन्यदरबार में अनन्त-अनन्त सम्पदा, चमत्कृति पड़ी है, उसका वेदन कर। आहा..! इस वेदन के बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार गया, दिगम्बर साधु हजारों रानी छोड़कर शुक्ललेश्या, लाखों वर्षों तक अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत पाले परन्तु उससे कुछ हुआ नहीं। चैतन्यमात्र दरबार में जा, प्रभु! आहाहा! दूसरी सब बात छोड़कर चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रस (है), वहाँ जा। आहाहा!

चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे;... दूसरी चिन्तवना छोड़ दे, दूसरी कल्पना छोड़ दे और अपना उपयोग अपने आनन्द में लगा दे। आहाहा! करना यह है। यह अनन्त काल में किया नहीं। **अवश्य प्राप्ति होगी ही।** तेरे चैतन्यदरबार में ही उपयोग लगा दे। आहाहा! बाहर में से सबमें से समेटकर, बाहर में से चिंता का विकल्प सब प्रकार का छोड़कर चैतन्यदरबार में उपयोग दे। आहाहा! भगवान अन्दर चैतन्यदरबार है। अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता, अनन्त-अनन्त गम्भीर शक्तियों का सागर है, गम्भीर शक्तियों का सागर प्रभु है। आहाहा! वहाँ उपयोग लगा दे।

उसके बिना सब फोगट होगा, प्रभु! भव का अभाव नहीं होगा। आहाहा!

चैतन्यदरबार में ही उपयोग को लगा दे;... भाषा तो सादी है। चैतन्य का उपयोग जो बाहर में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा में चला जाता है, वह सब तो शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं। चैतन्यदरबार में उपयोग लगा दे। वहाँ अकेला आनन्द और शान्ति भरी है। आहाहा! **अवश्य प्राप्ति होगी ही।** प्रभु में-परमात्मा में दृष्टि लगी, उपयोग लगा, जरूर प्राप्ति होगी। नि:सन्देह प्राप्ति होगी। दूसरे कोई प्रकार से प्राप्ति नहीं होगी।

अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है,... इसी प्रकार पुरुषार्थ किया। अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द, उसमें उपयोग लगा दिया, यह पुरुषार्थ अनन्त जीवों ने किया और वर्तमान में कर सकते हैं। प्रभु! यह कर न। आहाहा! **अनन्त-अनन्त काल से अनन्त जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है, इसलिए तू भी ऐसा कर।** अनन्त जीव यह कर सके हैं। अशक्य है, ऐसा नहीं है। दुर्लभ है। उपयोग लगा दे अन्दर में आनन्द में। अनन्त आनन्द प्राप्त होगा। अनन्त जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। सब अन्तर्मुख आनन्द में उपयोग लगाकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। दूसरी कोई क्रियाकाण्ड से हुए नहीं।

अनन्त-अनन्त काल गया,... आहाहा! **जीव कहीं न कहीं अटकता ही है न?** आहाहा! अनादि-अनन्त काल में अनन्त बार साधुपना लिया, पंच महाव्रत लिये, अट्ठाईस मूलगुण लिये, उसमें कोई आत्मा नहीं है। आहा..! **अटकने के तो अनेक-अनेक प्रकार हैं; किन्तु सफल होने का एक ही प्रकार है...** आहा...! चैतन्य भगवान, उसके दरबार में प्रवेश करना, उसका ही अनुभव करना, यह एक ही सफलता का उपाय है, बाकी सब असफलता के हैं। आहाहा! **वह है चैतन्यदरबार में जाना।** एक ही प्रकार है, **वह है चैतन्यदरबार में जाना।** भगवान चैतन्यदरबार। आहाहा ! बाहर में भी दरबार के पास जाते हैं तो कितनी योग्यता होती है। देखा है न। लींबडी है, लींबडी। रानी के पास जाए तो कपड़ा बाँधे। ऐसे ही नहीं जाते। ऐसे ही धोती पहनकर नहीं जाते। धोती पर कपड़ा बाँधकर फिर जाते हैं। हमने बहुतों को प्रत्यक्ष देखे हैं। व्याख्यान में आये थे दरबार, रानी आयी थी। रानी तो वहाँ राजकोट में आयी थी। भाई! राजकोट आयी थी न रानी? व्याख्यान में। बन्द किया होता है। राजकोट की रानी आयी थी। उनके पास जाने में भी सभ्यता

चाहिए। खुल्ले कपड़े पहनकर नहीं जा सकते। अच्छी धोती पहनकर चारों ओर से बन्द कपड़े पहनकर जाते हैं।

यहाँ आत्म-दरबार में जाना है। आहाहा! वहाँ तो सब विकल्पादि का त्याग करके कुछ भी आत्मश्लाघा-अपनी आत्मप्रशंसा करके रुकना... आहाहा! वह सब छोड़ दे, प्रभु! आहाहा! उसे छोड़कर... आहा.. ! **चैतन्यदरबार में जाना। स्वयं कहाँ अटकता है...** मुद्दे की रकम की बात है, प्रभु! थोड़ी सूक्ष्म लगे, परन्तु मूल रकम है। बहिन के साथ बात करते हुए स्वयं बोले हैं। वह तो कभी-कभार निकले। उसमें से लिखा है। आनन्द के अनुभव में, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में से यह बात आयी है। आहाहा!

कहते हैं कि **सफल होने का एक ही प्रकार है—वह है चैतन्यदरबार में जाना।** यह प्रकार। आहाहा! बाहर की सब चिन्ता, साधन, ख्याति, पूजा, लाभ, महिमा, महत्ता देखकर दुनिया तुझे चढ़ा दे कि ओहो! तू बड़ा है, ऐसा है। अन्तर में अनुभव होवे नहीं। आहाहा! कहते हैं, अन्तर दरबार में जाना। **स्वयं कहाँ अटकता है,...** स्वयं कहाँ अटकता है, **उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।** आहाहा! शर्त यह। स्वयं ख्याल करे। **स्वयं कहाँ अटकता है, उसका यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।** सूक्ष्म बात है, प्रभु! बहुत सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। जानपना में भी, श्रद्धा में भी कहाँ अटकता है, वस्तु कहाँ रह जाती है, उसका अटकना-रुकना किस प्रकार से होता है, उसका विचार करने से ख्याल में आता है। आहाहा!

द्रव्यलिंगी साधु... अनन्त बार नग्नपना लेकर दिगम्बर हो गया। हजारों रानियाँ छोड़ी। ओहोहो! **द्रव्यलिंगी साधु होकर भी जीव कहीं सूक्ष्मरूप से अटक जाता है,...** आहाहा! शुभभाव की मिठास में, शुभभाव सूक्ष्म शुभभाव महाव्रत का, ब्रह्मचर्य का, बाल ब्रह्मचारी हो, तो क्या हुआ ? बाल ब्रह्मचारी कोई धर्म नहीं। बाल ब्रह्मचारी तो काया की क्रिया अटकी-रुकी है, आत्मा नहीं रुका है। आहाहा! बाल ब्रह्मचारी तो अनन्त बार हुआ है। वह तो परलक्ष्यी शुभभाव है। आत्म-ब्रह्मचर्य.. आहा.. ! ब्रह्म अर्थात् आनन्द और चर अर्थात् चरना, आत्मा के आनन्द में चरना, वह ब्रह्मचर्य, कभी लिया नहीं, कभी किया नहीं, कभी रुचा नहीं। कभी अन्तर में कहाँ रुकता है, उसकी खबर नहीं। आहाहा!

यह राग की मन्दता,... दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु **शुभभाव की मिठास में रुक**

जाता है, 'यह राग की मन्दता,...' बहुत राग की मन्दता हो गयी। मिथ्यादृष्टि। आहाहा! **यह अट्ठाईस मूलगुण,...** मैं तो यह अट्ठाईस मूलगुण पालता हूँ। आहाहा! राग की मन्दता मेरे में है। **बस यही मैं हूँ,...** मैंने इतना किया, बहुत किया। पूरा संसार छोड़ दिया। हजारों रानी छोड़ दी, अरबों की कमाई लक्ष्मी छोड़ दी। उसमें क्या हुआ? आहाहा! अन्तर चैतन्य भगवान के दरबार में अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति, जिसकी गन्ध अनन्त काल में अंश भी आयी नहीं। आहाहा! मुद्दे की रकम है। **बस यही मैं हूँ,...** साधु मानता है। द्रव्यलिंगी साधु होकर शुभभाव की मिठास में रुक जाता है। **राग की मन्दता, यह अट्ठाईस मूलगुण, —बस यही मैं हूँ, यही मोक्ष का मार्ग है',...** उसमें से मार्ग निकलेगा। शुभभाव में से मार्ग नहीं निकलेगा। शुभभाव में से निकलेगा, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की अनादि की है। आहाहा!

इत्यादि किसी प्रकार सन्तुष्ट होकर अटक जाता है;... मान लेता है कि मैंने कुछ व्यवहार तो किया। व्यवहार करते-करते निश्चय हो जाएगा। आहा..! सूक्ष्म व्यवहार राग की मन्दता करते-करते भी कदाचित् कल्याण हो जाएगा। ऐसा अनादि से मिथ्यात्व में रुक गया है। मिथ्यात्व का जहर बड़ा कठिन है। आहाहा! सब छोड़ना, वह अनन्त बार छूटा। मिथ्यात्व एक बार एक सेकेण्ड नहीं छूटा। आहाहा! यह बात बड़ी अलौकिक है, भैया! **परन्तु यह अन्तर में...** ऐसे सन्तुष्ट हो गया कि मैं अट्ठाईस मूलगुण पालता हूँ, मैं ब्रह्मचर्य पालता हूँ, मुझे राग की मन्दता है, मुझे दुनिया की दरकार नहीं।

अन्तर में विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है... आहाहा! यह वस्तु है। विकल्प, जो सूक्ष्म विकल्प-राग है, उसके साथ एकत्वबुद्धि तो पड़ी है, यह मिथ्यात्व तो पड़ा है। आहाहा! **परन्तु यह अन्तर में विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है...** उससे तो भेदज्ञान, पर से भिन्नता का आनन्द का अनुभव तो किया नहीं और यहाँ अटककर रुक गया। **उसे क्यों नहीं देखता?** विकल्प की एकता टूटती नहीं, ऐसा क्यों नहीं देखता? **विकल्पों के साथ एकताबुद्धि तो पड़ी ही है...** बहुत सूक्ष्म अधिकार है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं अखण्ड हूँ, ऐसा अन्दर में गहराई में सूक्ष्म विकल्प उत्पन्न होता है, वह राग की एकता भी मिथ्यात्व है। आहाहा! **उसे क्यों नहीं देखता?**

अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती? दो बात की। कौन-सी दो बात?

अट्ठाईस मूलगुण पालता है, राग मन्द है, बाहर की सब क्रिया अच्छी करता है, परन्तु अन्तर में विकल्प तोड़ा नहीं। विकल्प और भगवान दोनों भिन्न हैं, उस विकल्प को तोड़ा नहीं। ओहोहो! और शान्ति मिली नहीं। आहाहा! अन्तर विकल्प टूटे बिना शान्ति मिले नहीं, प्रभु! और शान्ति मिले बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा! आज तो माल आया है। प्रभु के घर का यह माल है। बहिन द्वारा यह बात कही गयी है। आनन्द में रहते हुए यह बात आ गयी है।

... रुकना, बाह्य क्रिया सब की, परन्तु विकल्प के साथ एकता टूटी नहीं और शान्ति मिली नहीं। यहाँ एकता टूटी नहीं, इसलिए आत्मा की शान्ति मिली नहीं। यह तो देखता नहीं। आहाहा! चरम सीमा की बात है, प्रभु! आहाहा! **अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती?** आहाहा! **पापभाव को त्यागकर...** पापभाव छोड़ा तो मानो मैंने सर्वस्व कर लिया। आहा..! ऐसा तो अनन्त बार पापभाव छूटा है। नौवीं ग्रैवेयक गया। यह बात तो ऐसी लगे कि दुनिया को खबर नहीं पड़े। ऐसा मुनिपना, बाह्य आचरण क्रिया व्यवहार की, सब निरतिचार करता था। निरतिचार।

मोक्षमार्गप्रकाशक में बात है, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा भी द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि को बराबर थी। नौवीं ग्रैवेयक गया, उसे देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा थी। उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं थी। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। ऐसी क्रिया करके, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा भी करके, बाहर का आचरण करके नौवीं ग्रैवेयक चला गया। परन्तु विकल्प टूटना और शान्ति मिलनी, यह बात रह गयी। करना तो एक ही था। आहाहा! व्यवहार की लाख बात आये, व्यवहार आये, व्यवहार के प्रकार तो अनेक हैं, अनेक प्रकार होते हैं, होते हैं; नहीं है - ऐसा नहीं, परन्तु वह कोई वस्तु नहीं। वह कोई आत्मा का साधन नहीं। आहाहा! व्यवहार बिना निश्चय कहने में आता नहीं। ऐसी भाषा आती है। कहने में नहीं आता। भेद करना व्यवहार (है)। भेद करके समझाते हैं। परन्तु समझना तो निश्चय है। यह निश्चय, विकल्परहित है, उसे तो पकड़ा नहीं और अकेले व्यवहार में रह गया।

अन्तर में यह शान्ति क्यों नहीं दिखायी देती? पापभाव को त्यागकर 'सर्वस्व कर लिया' मानकर सन्तुष्ट हो जाता है। ऐसा मानकर... आहाहा! अपने में सन्तुष्ट (हो जाता है)। मैं बहुत करता हूँ, मैंने बहुत किया, ऐसे सन्तोष मानता है। **सच्चे आत्मार्थी**

को... आहाहा! **सच्चे आत्मार्थी को तथा सम्यग्दृष्टि को तो 'अभी बहुत बाकी है,...'** क्या कहते हैं? द्रव्यलिंगी अट्ठाईस मूलगुण पालता है, मन्द कषाय (हुआ) तो मानो मैंने बहुत किया। यहाँ तो कहते हैं, समकिती को अभी बहुत करना बाकी है, (ऐसा लगता है)। वह कहता है, मैंने बहुत किया, अज्ञानभाव में क्रियाकाण्ड में। यहाँ समकिती को अभी बहुत बाकी है, (ऐसा लगता है)। ओहो..! कहाँ चारित्र, कहाँ क्षपकश्रेणी, केवलज्ञान, अभी तो बहुत प्राप्त करना बाकी है। द्रव्यलिंगी ऐसी क्रियाकाण्ड में मैंने बहुत किया, ऐसा मानकर रुक जाता है। समकिती तो, बहुत बाकी है—ऐसा जानकर पुरुषार्थ करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

'अभी बहुत बाकी है,...' ओहोहो! चारित्र-अन्दर में रमना, आनन्द में रमना। आहाहा! चारित्र अर्थात् चरना, चरना अर्थात् जैसे पशु हरा घास मिठास से चरते हैं, लीला कहते हैं? हरा। हरे घास को (चरते हैं)। दो में अन्तर है। गाय खाती है, वह ऊपर-ऊपर से खाती है, उसका मूल नहीं उखाड़ती, मूल नहीं उखाड़ती। गधा खाता है, वह मूल उखाड़कर खाता है, इसलिए पुनः उगता ही नहीं। यहाँ तो पुनः उगेगा ऐसी दुनिया की आशा रखकर ऊपर-ऊपर से खाती है। गोचरी-गोचरी। गाय की चरी अर्थात् ऊपर-ऊपर से खाना। आहाहा!

मुमुक्षु :- यह तो दृष्टान्त हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ यह कहते हैं कि अपनी क्रिया भले रागादि मन्द करे, बाकी अन्दर बहुत करना है। मूल बहुत बाकी है। आहा..! ऊपर से घास खाया, समकित हुआ, आत्मज्ञान हुआ, चैतन्य का अनुभव हुआ। आहाहा! यह तो अभी ऊपर की बात है। आहाहा! अभी बहुत बाकी है।

समकिती ऐसा जानते हैं कि अभी तो मुझे बहुत करना है। मेरे में बहुत कमी है। मैं तो पामर हूँ। स्वामी कार्तिकेय में श्लोक है, समकिती चारित्रवन्त भी केवलज्ञानी के समक्ष मैं पामर हूँ, ऐसा कहते हैं। ऐसा पाठ है। स्वामी कार्तिकेय में श्लोक है। केवलज्ञानी के समक्ष मैं तो पामर हूँ। कहाँ छठा गुणस्थान, सातवाँ गुणस्थान चारित्रदशा! आहाहा! क्षण में छठा-क्षण में सातवाँ, क्षण में छठा-क्षण में सातवाँ। एक दिन में हजारों बार आवे।

व्याख्यान करते-करते समय आ जाए, विहार में चलते-चलते सप्तम हो जाए, खाते-खाते सप्तम हो जाए। आहाहा! अन्दर अप्रमत्तदशा में आ जाए। बाहर लोगों को दिखे नहीं कि यह क्रिया तो चलती है। अन्दर ही अन्दर आनन्द में चले गये हैं।

यहाँ कहते हैं, **सम्यग्दृष्टि को तो 'अभी बहुत बाकी है,...'** (द्रव्यलिंगी मुनि) अट्ठाईस मूलगुण पालता है और कहता है कि मैंने बहुत किया और समकिती को (लगता है) बहुत बाकी है। आहाहा! **बहुत बाकी है—इस प्रकार पूर्णता तक बहुत बाकी है,...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि अनुभव करते जानते हैं, अभी मुझे पूर्णता तक बहुत करना बाकी है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि अट्ठाईस मूलगुण और बाह्य क्रियाकाण्ड करके मान लेता है कि मैंने बहुत किया। इतना अन्तर है। आहाहा! **ऐसी ही भावना रहती है...** धर्मी जीव की, मुझे पूर्णता तक बहुत बाकी है, ऐसी ही भावना रहती है। आहाहा! उसका गर्व और अभिमान नहीं होता। मुझे तो अभी बहुत बाकी है। आहा..! चारित्र है, केवलज्ञान। आहा..! यह तो पामर दशा है। स्वामी कार्तिकेय में ऐसा पाठ है, मैं पामर हूँ। समकिती ऐसा मानते हैं कि मैं पर्याय में पामर हूँ। द्रव्य में प्रभु हूँ। द्रव्य भगवान है, पर्याय में मैं पामर हूँ - ऐसा पाठ है। आहाहा! मुझे बहुत करना बाकी है। आहा..! मैं किसका अभिमान करूँ? मैंने क्या किया कि उसका मैं सन्तोष ले लूँ? मुझे बहुत करना बाकी है। आहा..! **ऐसी ही भावना रहती है और तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।** तभी पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख अखण्ड रहता है। मुझे बहुत करना बाकी है—ऐसी दृष्टि रहती है, उसका पुरुषार्थ स्वभाव की ओर चलता ही है। **तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।** आहाहा!

अरे..! यह तो अनुभव की भाषा कैसी! उन्हें खबर नहीं थी कि कोई लिख लेता है। उन्हें बाहर प्रसिद्धि में आने का, लिखने का बिल्कुल नहीं है। धर्मरत्न है, भगवतीस्वरूप है, भगवती माता है। आहाहा! ओहोहो! अन्दर में से यह बोले हैं। **तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है।** तभी (अर्थात्) कब? मुझे सम्यग्दर्शन हुआ परन्तु करना बहुत बाकी है। ऐसी जो मान्यता रहती है, तभी पुरुषार्थ अखण्ड रह पाता है। तो पुरुषार्थ अखण्ड रहे। आहाहा!

गृहस्थाश्रम में सम्यक्त्वी ने मूल को पकड़ लिया है,... समकिती ने मूल को पकड़ लिया है। आत्मद्रव्य जो मूल वस्तु अखण्डानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ महासत्ता जिसमें आवरण की गन्ध नहीं, आहा..! जिसमें अल्पता नहीं, आवरण नहीं, अशुद्धता

नहीं, मन्दता नहीं। आहा..! जिसमें विपरीतता नहीं, ऐसा चैतन्यपिण्ड प्रभु, अन्दर... आहाहा! ऐसे मूल को पकड़ लिया। समकिती ने मूल को पकड़ लिया। यह मूल। आहाहा! व्यवहार की बात लोगों को अच्छी लगे। क्योंकि किया है और करते हैं। उसमें करना क्या है? शरीर की क्रिया और बाहर की... निश्चय की बात अन्दर सूक्ष्म पड़े। थोड़ी कड़क लगे। भगवान! तेरे पुरुषार्थ की कमी नहीं है, नाथ! तेरे में तो अनन्त पुरुषार्थ पड़ा है न, प्रभु!

... जो किया, उसके सिवा भी बाकी है। सादी भाषा में कुदरती आ गया है। वे तो लिखे नहीं, बोले नहीं। ... **(दृष्टि-अपेक्षा से) सब कुछ कर लिया है,...** गृहस्थ ने। गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन होता है। दृष्टि अपेक्षा से सब कुछ कर लिया है। **अस्थिरतारूप शाखाऐं-पत्ते जरूर सूख जायँगे।** आहाहा! भगवान आत्मा को (ग्रहण किया), अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय चमत्कारिक चैतन्यरत्न का भण्डार भगवान, उसे पकड़ लिया, उसमें से सब आयेगा। अस्थिरता बाकी है। है? **अस्थिरतारूप शाखाऐं-पत्ते जरूर सूख जायँगे।** जिसने मूल पकड़ा है, उसे यह जरूर सूख जाएगा-नाश हो जाएगा। आहाहा! आगम में ऐसा लिखते हैं, अन्तिम के अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार छठा-सातवाँ आता है, ऐसा पाठ है। अन्तिम के अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार छठा-सातवाँ, छठा-सातवाँ, उसमें एकदम अन्दर लीन हो जाते हैं, केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। अन्दर शक्ति में सब भण्डार भरा है। यही शक्ति ज्ञान सामर्थ्य। आहाहा! ज्ञान का सत्त्व, आनन्द का सत्त्व, उसमें सब भरा है। कभी देखा नहीं, कभी सुना नहीं। परमात्मा अन्दर रह गया। बाहर की पामरता की गिनती में प्रभुता मान ली। पामरता की परिणति-पर्याय में प्रभुता मान ली, प्रभु एक ओर बाकी रह गया। आहाहा! मुद्दे की रकम यह है। बातचीत करने में कल भी सार आया था। कल भी सबेरे मूल बात आयी थी।

मुमुक्षु :- आपसे ही सुन रहे हैं हम।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ तो किसी ने कल कागज रखा था कि यह बोल पढ़ना। किसी का है, हमें क्या, ऐसे पढ़ेंगे। शिक्षण शिविर में बहिनश्री के वचनामृत यह-यह पढ़ना। किसी ने लिखा है। भले जिसने भी लिखा हो। हमें यह सुनने का भाव है। आत्मा है, कोई भी आत्मा है।

यहाँ कहते हैं, जिसने आत्मा का मूल पकड़ लिया, उसके पत्ते, फल, फूल सूख जाएँगे, रहेंगे नहीं। उसको चारित्र और केवलज्ञान हो जाएगा। आहाहा! **द्रव्यलिंगी साधु ने मूल को ही नहीं पकड़ा है;...** आहाहा! चैतन्यगुण का भण्डार प्रभु अरूपी निर्विकल्प आनन्द का कन्द, सच्चिदानन्द, सत् नित्य रहनेवाली चीज़ ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु, वह तो महादल है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल है, उसको पकड़ा नहीं। द्रव्यलिंगी ने साधु ने मूल को ही पकड़ा नहीं। आहाहा! ऐसी बात भी कम हो गयी है। साधारण प्राणी तो बेचारे एक घण्टा सुनने आये, सुनकर प्रसन्न हो जाए। **मूल को ही नहीं पकड़ा है; उसने कुछ किया ही नहीं।** आहाहा! द्रव्यलिंगी ने आत्मद्रव्य को निर्विकल्प को पकड़ा ही नहीं तो उसने कुछ किया ही नहीं। और समकिती ने मूल को पकड़ा है तो सब पीछे का चारित्र का दोष आदि है, वह सब नाश हो जाएगा। आहाहा!

ऋषभदेव भगवान। तीन ज्ञान, क्षायिक समकिती। फिर भी गृहस्थाश्रम में ८३ लाख पूर्व रहें। ऋषभदेव भगवान। ८३ लाख पूर्व। एक पूर्व में छप्पन करोड़ सत्तर करोड़ छप्पन लाख वर्ष। इतने तो वर्ष है। सत्तर लाख छप्पन करोड़ (वर्ष) एक पूर्व में। ऐसे ८३ लाख पूर्व मुनिपना के बिना रहे। आहाहा! चारित्र की कितनी कीमत होगी! आहाहा! तीन ज्ञान तो लेकर आये थे, समकित तो था। चारित्र लेने में काल की अनुकूलता थी, उसमें भी इतना काल निकालना पड़ा। आहाहा! ८३ लाख पूर्व के बाद चारित्र आया। परन्तु सम्यग्दर्शन है तो आये बिना रहे ही नहीं।

बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे... बाह्यदृष्टि लोगों को बाह्य त्याग देखकर... आहाहा! **बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे कि 'सम्यक्त्वी को अभी बहुत बाकी है...** लोग बहुत आये हैं। **द्रव्यलिंगी साधु ने मूल को ही नहीं पकड़ा है; उसने कुछ किया ही नहीं। बाह्यदृष्टि लोगों को ऐसा भले ही लगे...** ऐसा लगे, आहाहा! बहुत किया। **'सम्यक्त्वी को अभी बहुत बाकी है और द्रव्यलिंगी मुनि ने बहुत कर लिया';...** आहाहा! ऐसा मानकर संसार पोसते हैं। आहाहा! **द्रव्यलिंगी मुनि ने बहुत कर लिया'; परन्तु ऐसा नहीं है। परीषह सहन करे किन्तु अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी,...** भगवान! सम्यग्दर्शन हुए बिना राग के कर्तृत्व की बुद्धि छूटती नहीं। मैं राग का कर्ता हूँ और राग मेरा कार्य है—ऐसी मिथ्याबुद्धि छूटती नहीं। समकित बिना गहराई में उसकी कर्ताबुद्धि रहती है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में आत्मज्ञान हुआ वहाँ राग की क्रिया का कर्ता और मेरा (राग) कार्य, ऐसा रहता नहीं। वह तो राग का ज्ञाता रहता है। जानने की पर्याय भी अपनी ताकत से अपने से उत्पन्न हुई है। राग आया तो उससे राग का ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। अपने में ही अपनी स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! अज्ञानी को द्रव्यलिंग में सूक्ष्म विकल्प क्या चीज़ है अन्दर, उससे कैसे छूटना, उसकी खबर नहीं। आहाहा! अन्दर सूक्ष्म विकल्प क्या है और उस विकल्प में मेरी एकत्वबुद्धि कहाँ है, यह मिथ्यादृष्टि को द्रव्यलिंगी को अन्दर सूझ-बूझ होती नहीं। सूझ-बूझ होती नहीं। आहाहा! बात अच्छी आयी है।

परीषह सहन करे किन्तु अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी,... अन्तर सम्यग्दर्शन बिना कर्ताबुद्धि कभी छूटती नहीं। क्या कहा?

करे करम सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।

कर्ता सो जाने नहीं कोई, जाने सो कर्ता नहीं होई। समयसार नाटक। आहाहा!

कर्ताबुद्धि अन्दर पड़ी है। ज्ञायकस्वभाव भगवान महाप्रभु भगवन्त, उसकी ओर झुका नहीं... आहाहा! तो राग की बुद्धि-कर्ताबुद्धि छूटी नहीं। कर्ताबुद्धि छूटी नहीं तो मिथ्यात्व छूटा नहीं और मिथ्यात्व का पोषण होता रहा। क्योंकि राग का कर्ता होता है तो मिथ्यात्व का पोषण साथ में रहता है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! जब तक राग की कर्ताबुद्धि है, तब तक मिथ्यात्व का पोषण चलता रहता है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन में राग की बुद्धि-कर्ताबुद्धि छूट जाती है और अकर्ताबुद्धि में पुष्टि होती है। राग आता है, लड़ाई भी होती है, परन्तु उसका स्वामी नहीं होता। उस समय भी अपने ध्रुव ध्येय का ध्यान हटता नहीं। ध्रुव पर दृष्टि पड़ी है, वह हटती नहीं। खसती नहीं, हमारी काठियावाड़ी भाषा है। आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी। आहा..!

अन्तर में कर्तृत्वबुद्धि नहीं टूटी, आकुलता का वेदन होता है,... इसकी उसको खबर नहीं है। मैं धर्मी नाम धराता हूँ, परन्तु आकुलता तो अन्दर है, शान्ति तो आयी नहीं। आहाहा! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का व्यक्तपना-प्रगटपना (है नहीं)। शक्ति तो भगवान आनन्द की पूरी पड़ी ही है। उसकी व्यक्तता का अंश तो आया नहीं। आहाहा!

इसलिए कर्तृत्वबुद्धि नहीं छूटी। आकुलता का वेदन होता है। आहाहा! ऐसी क्रिया करे, फिर भी अन्तर में तो आकुलता है। क्योंकि आनन्द का स्पर्श हुआ नहीं तो कर्ताबुद्धि छूटी नहीं। आहाहा! **उसने कुछ किया ही नहीं।** उसने कुछ किया ही नहीं। जहाँ कर्तृत्वबुद्धि छूटी नहीं, आकुलता छूटी नहीं, उसने कुछ किया ही नहीं। सूक्ष्मरूप से अन्दर में-अन्दर में राग की आकुलता बहुत सूक्ष्म, उसकी एकताबुद्धि छूटी नहीं। इसलिए अन्दर में से शान्ति, आत्मा में जो शान्ति है, उस शान्ति का झरना तो आया नहीं। शान्ति का झरना का वेदन है नहीं और कर्ताबुद्धि छूटी नहीं, इसलिए आकुलता रहती है। इतना त्याग करे, हजारों रानी छोड़े, फिर भी अन्दर में आकुलता और दु:खी है।

समकिती ९६ हजार स्त्रियों के साथ शादी करे। भरतेश वैभव में लेख है। भरतेश वैभव है न? भरत हमेशा सैकड़ों स्त्रियों से शादी करते थे। बाहर निकलते थे, वहाँ राजा-रानी अपनी लड़कियों को (शादी के लिये लाते थे)। एक दिन में सैकड़ों शादियाँ करते थे। ९६ हजार। फिर भी समकिती, क्षायिक समकिती आनन्द में रहते हैं। अरेरे..! राग के अभावस्वभावरूप भगवान और राग का सद्भावरूप आकुलता, दोनों की भिन्नता भासी नहीं, तब तक कुछ किया नहीं। आहाहा! राग की सूक्ष्म आकुलता और आत्मा अनाकुल आनन्दकन्द, इन दोनों की सूक्ष्म भिन्नता भासित नहीं होती, तब तक अन्तर में कोई (कल्याण) होता नहीं। बाहर से भले माने, लोग भी माने कि इसने बहुत किया, उसने यह त्याग किया और उसने यह किया। उसने कुछ किया ही नहीं। आहाहा! १९९ (पूरा हुआ)।

शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति, सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये। मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया। 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—अनन्त गुणों का अंश प्रगट हुआ; समस्त लोकालोक का स्वरूप ज्ञात हो गया।

जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ, उसी मार्ग से मुनिपना और केवलज्ञान होगा—ऐसा ज्ञात हो गया। पूर्णता के लक्ष्य से प्रारम्भ हुआ; इसी मार्ग से

देशविरतिपना, मुनिपना, पूर्ण चारित्र एवं केवलज्ञान—सब प्रगट होगा।

नमूना देखने से पूरे माल का पता चल जाता है। दूज के चन्द्र की कला द्वारा पूरे चन्द्र का ख्याल आ जाता है। गुड़ की एक डली में पूरी गुड़ की पारी का पता लग जाता है। वहाँ (दृष्टान्त में) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है। इसलिए सम्यक्त्व में चौदह ब्रह्माण्ड के भाव आ गये। इसी मार्ग से केवलज्ञान होगा। जिस प्रकार अंश प्रगट हुआ, उसी प्रकार पूर्णता प्रगट होगी। इसलिए शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्ध आत्मा की अनुभूति, वह सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है॥२००॥

२०० (बोल)। **शुद्धनय की अनुभूति...** आहाहा! **शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप...** क्या कहते हैं? शुद्धनय की अनुभूति-सम्यग्दर्शन। **शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप...** जो १४-१५ गाथा में समयसार में (आया)।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥१४॥

(यह १४वीं गाथा) १५वीं में ऐसा आया है,

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

*अर्थात् अखण्ड वस्तु, उसका जो कथन है शास्त्र में, वह 'अपदेश' कहने में आया, क्या कहा? जयसेनाचार्यदेव की टीका में **अपदेस** का अर्थ ... किया है।... **अपदेस** का अर्थ अखण्ड। ... (आवाज खराब है)। अन्दर शान्ति, वीतरागता आती है, वह भावश्रुत है। कहा था यह। यह करना। शुद्ध आत्मा की अनुभूति, उसका विषय तो अबद्धस्पृष्टादिरूप (शुद्ध आत्मा है)। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

* यहाँ से आवाज अस्पष्ट है।